Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
October to December 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLVIII, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

अष्टांग योग से आत्मनिष्ठ एवं मानसिक जगत का ज्ञान

डॉ. विनोद राय*

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शासकीय महाविद्यालय, डोलरिया, जिला नर्मदापुरम (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – प्रत्येक विद्या की अपनी एक प्रणाली है। यदि मनुष्य एक अंतरिक्ष वैज्ञानिक बनने की जिज्ञासा रखता है तो मात्र अंतरिक्ष विज्ञान के वक्तव्य सुनने से वह अंतरिक्ष वैज्ञानिक नहीं बन सकता। उसे अंतरिक्ष विज्ञान का यथावत अध्ययन करना होगा और एक प्रयुक्त प्रणाली के माध्यम से उस विज्ञान से सम्बधितं ज्ञान अर्जित करता होगा, तब कहीं जाकर वह एक अंतरिक्ष वैज्ञानिक बनने में सक्षम होगा। प्रत्येक विद्या की अपनी एक प्रणाली है मात्र उपदेश को सुनने भर से सभी परिणामों की प्राप्ति असंभव है जब तक कि उन उपदेशों को सुनकर उन्हें आत्मसात न किया जाये और उनको व्यावहरिक जीवन में प्रारम्भ न किया जाये। प्रयोग के अभाव में परिणाम अधूरे ही रहेंगें और दोष साधनों को दिया जायेगा और साध्य को, लक्ष्य को असंभव कहकर छोड दिया जायेगा। जबकि कारण साधक और उसकी साधना प्रणाली का अधूरापन है।

प्रयुक्त साधन–प्रणाली लेकर उसकी युक्ति संगत प्रायोगिक विधियों में श्रद्धा रखकर साधना करने से हम उस परिणाम को प्राप्त कर सकते हैं जो उस साधन प्रणाली के परिणाम के रूप में वर्णित है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार कोई ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम साधारणीकरण की सहायता लेते हैं और साधारणीकरण घटनाओं के पर्यवेक्षण पर आधारित है। हम पहले घटनावली का पर्यवेक्षण करते है फिर उनका साधारणीकरण करते हैं और फिर उनसे अपने सिद्धांत या मतामत: निकालते हैं। हम जब तक यह प्रत्यक्ष नहीं कर लेते है कि हमारे मन के भीतर क्या हो रहा है और क्या नहीं, तब तक हम अपने मन के सम्बन्ध में, मनुष्य की आभ्यान्तरिक प्रकृति के सम्बन्ध में, मनुष्य के विचार के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जान सकते। वाह्य जगत के व्यापारों का पर्यवेक्षण करना अपेक्षाकृत सहज है, क्योंकि उसके लिए हजारों यंत्र निर्मित हो चुके हैं, पर अंतर्जगत के व्यापार को समझने में मदद करने वाला कोई भी यंत्र नहीं है। अष्टांग योग रूपी राजयोग–विद्या पहले मनुष्य की उसकी अपनी आभ्यन्तरिक अवस्थायों के पर्यवेक्षण का इस प्रकार उपाय दिखा देती है कि मन ही उस पर्यवेक्षण का यंत्र है। मनोयोग की शक्ति का सही सही नियमन कर जब उसे अंतर्जगत की ओर परिचालित किया जाता है, तभी वह मन का विश्लेषण कर सकती है। और तब उस ज्ञानरूपी प्रकाश से हम यह सही सही समझा सकते हैं कि अपने मन के भीतर क्या घट रहा है। मन की शक्तियों इधर उधर बिखरी – हुई प्रकाश की किरणों के समान हैं। जब उन्हें केन्द्रीभूत किया जाता है तब वे सब कुछ आलोकित्त कर देती हैं। यही ज्ञान का – हमारा एकमात्र उपाय है।

मन को अन्तर्मुखी करना, उसकी बहर्मुखी गति को रोकना, उसकी समस्त शक्तियों को केन्द्रीभूत कर उस मन को ही उपर उनका प्रयोग करना, ताकि वह अपना स्वभाव समझ सकें, अपने आपको विश्लेषण करके देख सके एक अत्यन्त कठिन कार्य है। परंतु इस विषय में वैज्ञानिक प्रथा के अनुसार अग्रसर होने के लिए यही एकमात्र उपाय है। अष्टांग योग के अभ्यास से मन और बुद्धि से मल, विक्षेप और आवरण हटते जाते हैं, वैसे–वैसे आध्यात्मिक आलोक की उपलब्धि प्राप्त होती जाती है। आध्यात्मिक उन्नति की सबसे बड़ी बाधा अविद्या है। अविद्या से अस्मिता, अस्मिता से राग, राग से द्वेष और द्वेष से अभिनिवेश, अभिनिवेश से सकाम कर्म, उनकी वासनाओं से जन्म, आयु, भोग एवं उनमें सकाम कर्मों के पाप–पुण्य के आधार पर सुख–दु:ख आदि प्राप्त होते हैं। उन समस्त विकारों की निवृत्ति हेतु महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग को प्रमुख साधन माना है। अष्टांग योग के विभिन्न अंगों का अभ्यास योग साधक की साधना करने के लिए आवश्यक हैं। इससे शरीर, मन की अशुद्धियों दूर होती हैं और क्रमश: अभ्यास से आध्यात्मिक उपलब्धियों की प्राप्ति होने लगती हैं। अष्टांग योग के विस्तृत स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है–

अष्टांग योग का स्वरूप– अष्टांग योग में वर्णित साधनों को बहिरंग और अंतरंग साधनों के रूप में विभाजित किया गया है। यह सभी आठ अंग अन्योन्याश्रित तथा प्रत्येक का समान महत्व है। प्रथम पाँच अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार बहिरंग साधन अथवा बहिरंग योग कहलाते हैं। अन्य तीन धारणा, ध्यान तथा समाधि को अंतरंग साधन या अंतरंग योग कहते हैं। बहिरंग साधन का तात्पर्य उन अभ्यासों से है जिनका लक्ष्य शरीर, समाज तथा अन्य विषयों के संदर्भ में होता है। अंतरंग साधनों का उद्देश्य एवं लक्ष्य आत्मचिन्तन एवं बहिरंग साधनों का उद्देश्य एवं लक्ष्य व्यावहारिक, शारीरिक, मानसिक परिष्कार होता है। बहिरंग साधनों का लक्ष्य वस्तुनिष्ठ होता है परन्तु अंतरंग साधनों का लक्ष्य आत्मनिष्ठ होता हैं महर्षि पतंजलि अष्टांग का वर्णन इस प्रकार से करते हैं–

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।।
पांतजल योग सूत्र 2/29

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायान, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के आठ अंग हैं। योग के विभिन्न अंगों के महत्व को क्रमानुसार हम यहाँ समझ सकते हैं–

1. **यम–**यम वास्तव में हमारे व्यवहार से संबंधित है, इनके माध्यम से हम व्यवहार को परिश्कृत करते हैं। हमारा व्यवहार दूसरों से जुड़ा होता है अर्थात् हम जो व्यवहार दूसरों के साथ करते है, उसमें पवित्रता की आवश्यकता

होती है जो कि यम के पालन से प्राप्त होती है। महर्शि पतंजलि ने यम के पांच अंग बताये हैं।

'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचार्या परिग्रहा यमा:'

अर्थात्

अहिंसा,सत्य,अस्तेय,ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच यम हैं।

यम के इन अंगो का वर्णन निम्नलिखित हैं :-

अहिंसा- अर्थात् किसी प्राणी को मन, वचन, कर्म से पीड़ा न पहुंचाना। आयुर्वेद ग्रन्थ 'अष्टांगहृदय' के अनुसार हिंसा तम का द्योतक है। यह अभिघात (चोट मारना) और प्रतिरोध को उत्पन्न करने वाला होता है। अत: इसे पापकर्म बताकर त्यागने का निर्देश हैं शांडिल्यउपनिषद के अनुसार- मनसा, वाचा कर्मणा कभी भी किसी प्राणी को कष्ट न देना अहिंसा है।

सत्य- सत्य को यथार्थ वचन द्वारा समझा जाता है। स्वामी हरिहरानन्द के अनुसार वाक्य को तदनुरूप करने की चेष्टा ही सत्यसाधन है। मनुस्मृति में कहा गया है कि सत्य बोलो, प्रिय बोलो। अप्रिय सत्य नहीं बोलो एवं प्रिय असत्य भी नहीं बोलो, यही सनातन धर्म है।

अस्तेय- अस्तेय का सामान्य अर्थ चोरी करना है अत: अस्तेय का अर्थ चोरी न करना है। इसका प्रभाव व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन पर पड़ता है। जो धर्मत: अप्राप्य होता है उस प्रकार के द्रव्य का ग्रहण स्तेय कहलाता है। पृथ्वी में कहीं पर भी गुप्त स्थल में स्थित सभी तरह के घोषित रत्न वस्तु पदार्थ आदि उसके लिए प्रकट हो जाते है। किसी भी पदार्थ वस्तु पदार्थ के प्रति राग (आसक्ति) का होना भी स्तेय (चोरी) कहलाता है।

अपरिग्रह- आपातकाल में भी इच्छानुसार द्रव्यों का संग्रह न करना अपरिग्रह कहलाता है। परिग्रह का अर्थ जमा करना है। अपरिग्रह अर्थात् संचय प्रवृति का त्याग करना है। महर्षि व्यास के अनुसार-अर्जन, रक्षण, क्षय संग और हिंसा इन पांच प्राकर के दोषों को देखकर विषयों को ग्रहण न करना अपरिग्रह है। आपातकाल में भी इच्छानुसार द्रव्यों का संग्रह न करना अपरिग्रह कहलाता है। अपरिग्रह अर्थात् संचय प्रवृत्ति का त्याग करना है।

ब्रह्मचर्य- यह इन्द्रियों का संयम है। इसके द्वारा ऊर्जा का संरक्षण सिखा जाता है। शारीरिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य को तप कहा जा सकता है। क्योंकि तप का अर्थ मन का निष्काषन करना है और ब्रह्मचर्य अर्थात् इन्द्रिय संयम होता है। ब्रह्मचर्य से आत्मिक, भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति होती है। योगी ही ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करके आध्यात्मिक उन्नति करते है.

2. **नियम-** यदि हम व्यवहार के मूल में जाए तो मन ही इसकी उत्पत्ति का कारण है। नियम का अर्थ नियमित अनुष्ठानो द्वारा मन को अनुशासन में लाकर मन के विखराव को रोकना है। महर्षि पतंजलि नियम का वर्णन इस प्रकार करते है-शौचसंतोषतपस्रूस्वाध्यायेशवरप्राणीधानानि नियमा: । नियम अत्यंत आवश्यक अंग हैं जिसे सभी ने स्वीकार किया है कि यह योग का महत्वपूर्ण अंग है। उपनिषद संहिता आदि में योग के अंग के रूप में नियम का वर्णन है। विज्ञानभिक्षु ने तप स्वाध्याय संतोष, पवित्रता तथा ईश्वरपूजन को योग की सिद्धियों को प्रदान करने वाले नियम कहा है। इन नियमों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है-

शौच- शौच का सामान्य अर्थ शुद्धिकरण है। आन्तरिक व सूक्ष्म रुप में इसे पावनता कहते है। पावनता कभी नष्ट नहीं होती है इसलिए ईश्वर को पतित पावन कहते है। इस संबंध में तुलसीदास जी ने कहा है 'निर्मल मन जन सो मोहि भावा। मोहि छल कपट छिद्र न भावाद्य' मन पवित्र होने पर ही परमात्मा को प्रिय होते हैं कपट छल रहने पर उन्हें अप्रिय लगते है।

संतोष - संतोष एक मानसिक गुण है जिससे सुख प्राप्त होता है। संतोष से ही जीवन में सुख-शांति प्राप्त होती है, यह इसका आधार स्रोत है। भौतिक आकाक्षाओं की पूर्ति की ललक व उसे प्राप्त करने के पश्चात भोग करना तृष्णा है और तृष्णा के पश्चात असंतोष होता है। तृष्णा का अंत नहीं होता है संतोष करने पर ही इसकी समाप्ति हो सकती है। अत संतोष ही शांति आनन्द की प्राप्ति का मुख्य साधन है।

तप-यह नियम का तीसरा अंग है। इसके द्वारा सहनशीलता का अभ्यास किया जाता है तथा इसके माध्यम से व्यवहार में उत्पन्न दोषों का निराकरण किया जाता है। उदाहरणत: चन्द्रायण व्रत, यह तप का ही एक प्रकार है, जिसके माध्यम से पूर्वकृत दोषकर्मो का परिमार्जन किया जाता है। तप व्यवहार परिमार्जन के साथ ही शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक परिमार्जन हेतु एक महत्वपूर्ण तकनीक है।

स्वाध्याय- स्वयं अपने जीवन का समीक्षात्मक अध्ययन ही स्वाध्याय कहलाता है। यह शास्त्रों के अध्ययन द्वारा संपन्न होता है और इससे ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति होती है। गीता में कहा गया है 'नहि ज्ञानेन सदृशंपवित्र मिहविधाते।' अर्थात् ज्ञान के सदृश पवित्र संसार में कुछ नहीं है। स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है, जो हमारे व्यवहार को सन्मार्ग में प्रेरित करती है। स्वाध्याय का महत्व मानव जीवन में बहुत है।

ईश्वरप्रणिधान - प्रणिधान का अर्थ है, धारणकरना स्थापित करना। **'समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात'** ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्ध होती है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार प्रणिधान का अर्थ समर्पण बताया है तथा कहा कि ईश्वर समर्पण भाव में सब कुछ समर्पित कर दिया जाता हैं इसके पश्चात हि समाधी की पूर्णता होती हैं ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर को धारण करना।

3. **आसन-**आसनों का पूर्ण वर्णन हठयोग से ग्रन्थों में ही उपलब्ध होता है। हठयोग प्रदीपिका में आसन का योगाभ्यास में प्रथम स्थान है। हठयोग में आसनों के अनेक भेद बतलाये गये हैं, परन्तुमहर्षि पतंजलि ने आसन शरीर को सुखदायी रखने की तकनीक के रूप में बताया है। उनके अनुसार 'स्थिरसुखमासनम्' अर्थात् जो स्थिर और सुखदायी हो वह आसन है। आसन शरीर के मन स्थानों में रहने वाली 'हव्य वहा' व 'कव्य वहा' विद्युत शक्ति को क्रियाशील रखते हैं। आसनों का सीधा प्रभाव शरीर की नस-नाडीयों के अतिरिक्त सूक्ष्म कशेरुकाओं पर भी पडता है।

4. **प्राणायाम-** प्राणायाम का अर्थ है-प्राण का विस्तार करना। स्थूल रूप में यह जीवनी शक्ति प्राण से संबंधित है। योगसुत्रकार महर्शि पतंजलि के अनुसार- महर्षि पतंजलि में अष्टांग योग का चौथा अंग प्राणायाम बताया है, 'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद प्राणायाम।' अर्थात्-उस आसन की सिद्धि होने के बाद, श्वास और प्रश्वास की गति का स्थिर हो जाना प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम के संदर्भ में बहुत से विद्धानों ने अपने विचार रखे हैं और उसे समझने की कोशिश की है। स्वामी हरिहरानंद के अनुसार, श्वासगति तथा प्रश्वासगति का रोध करना ही प्राणायाम है। स्वामी स्वात्माराम के अनुसार 'चले वातं चलं चित्तं निश्चले निश्चल भवति।' योगी स्थाणुत्वामासीति ततोवायु निरोधयेत् अर्थात् वायु के चलायमान होने पर चित्त भी चंचल होता है और वायु के निश्चल हो जाने पर चित्त भी स्थिर हो जाता है तब योगी स्थिरता को प्राप्त होता है। अत: प्राणायाम का अभ्यास करे।

5. **प्रत्याहार-**वस्तुत: पतंजलि के अष्टांगयोग में प्रत्याहार अन्तरंग तथा

बहिरंग अवस्थाओं में सेतु रूप है। महर्षि पतंजलि के अनुसार – 'स्वविषयासंप्रयोगचीत्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार:' अपने विषयों के सम्बन्ध से रहित होने पर इंदियों का जो चित्त स्वरूप में तदाकार सा हो जाता है वह प्रत्याहार है। स्वामी हरिहरानंद के अनुसार दचित्त निरोध होने पर इंदियों का निरोध साधन रूप प्रत्याहार ही योगियों का उपादेय होता है। विज्ञानभिक्षु के अनुसार, इंदियों का निग्रह करना अर्थात् उन्हें वश में करके अपनी इच्छानुसार उनसे कार्य लेना ही प्रत्याहार कहा गया है।

6. धारणा– धारणा पतंजलि के अष्टांग योग में छठे अंग के रूप में वर्णित है। पतंजलि ने धारणा को अन्तरंगयोग मानते हुए संयम का अंग माना है। महर्षि पतंजलि के अनुसार 'देशबंधश्चितश्य धारणा' किसी एक देश में चित्त को ठहराना धारणा है। व्यास भाष्य के अनुसार– 'नाभीचक्र, हृदय पुण्डरी, मूर्द्धज्योति नासिकाग्र,जिह्वाग्र इत्यादि देशों में (बंध होना) अथवा बाहा विषय में वृत्तिमात्र के द्धारा चित्त का जो बध है, वही धारणा है।

7. ध्यान– धारणा के पश्चात् ध्यान की प्रक्रिया है। महर्षि पतंजलि के अनुसार 'तत्र प्रत्ययेकतानताध्यानम।' (जहां पर चित्त का केन्द्रित किया जाए) उसी में वृत्ति (वित्तवृत्ति) का एक तार चलना (एकाग्र होना) ही ध्यान कहलाता है। प्यास भाष्य के अनुसार– उस देश में, ध्येयविषयक प्रत्यय की जो एकातानता अर्थात् अथ प्रत्यय के द्धारा अपरामृष्ट एकरूप प्रथाह है, वहीं ध्यान है। स्वामी हरिहरानंद के अनुसार– अभ्यास बल से जब धारणा एकतान या अखण्ड धारा की भांति हो जाता है, तब उसे ध्यान कहते है। गीता के अनुसार, जिस प्रकार वायुरहित स्थान में स्थित दीपक की लो चलायमान नहीं होती, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गई है।

8. समाधि–समाधि पतजलि अष्टांगयोग का आठवां तथा अन्तिम लक्ष्य है। प्राय: योग की सभी विचारधाराओं में समाधि को अन्तिम लक्ष्य स्वीकार किया गया है। यह मन की समस्त वृत्तियों के निरोध या विनाश की अवस्था है। महर्षि पतंजलि के अनुसार 'तदेवार्थमात्रनिर्मासस्वरूपशून्यमिव समाधि:' जब (ध्यान में) मात्र ध्येय (लक्ष्य) की ही प्रतीति होती है तथा चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है, तब वही (ध्यान ही) समाधि हो जाता है। व्यास भाष्य के अनुसार ध्यान ही जब ध्यय स्वाभाव के आवेश में अपने ज्ञान्तामक स्वाभाव से शुन्य के सामान होता है तब (उसे) समाधि कहते है। विज्ञानभिक्षू के अनुसार ध्यान जब ध्येय के अत्यधिक चिन्तन से ध्यान, ध्येय तथा ध्यात्र भाव की दृष्टि से रहित होकर ध्यय मात्र का आकार हो जाता है तब समाधि कहलाता हैं स्वामी विवेकानंद के अनुसार– जब ध्यान में वस्तु का रूप या बाहरी भाग परित्यक्त हो जाता हैं, तभी यह समाधि अवस्था आती है।

उपरोक्तत विवरण से यह स्पष्ट है कि, अष्टांग योग के ये अंग ऐसे उपाय हैं जिनसे शारीरिक तथा मानसिक विकास के साथ ही साथ आध्यात्मिक विकास भी संभव होता है। वास्तव में अष्टांग योग का प्रत्येक अंग प्रथक रूप से योग के अभ्यास में एक–एक साधन है। जो की जीवन के लिए एक उपयोगी व श्रेष्ठ साधन हैं। योग की पूर्ण साधना के लिए इन आठों अंगो क्रमश: अभ्यास आवश्यक है। क्रमश: एक–एक अंग पर पूर्ण अधिकार हो जाने पर ही अग्रिम योगागों में प्रवृत्ति होती है। अष्टांग योग के ये सभी साधन परस्पर अन्योन्याश्रित होते हैं, सभी अंगों का महत्व एवं उपयोग पारस्परिक निर्भर है।

अत: अष्टांग योग अन्तर्जगत से सम्बन्धित घटनाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण हेतु महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक विधि है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पवनकुमारी विज्ञानभिक्षु प्रणित योगसार संग्रह इस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली पृष्ठ संख्या 67
2. पतंजली योगसूत्र 2/3
3. पतंजली योगसूत्र 2/12
4. पतंजली योगसूत्र 2/30
5. अष्टांग हृदय 2/21–22
6. मानरा गोस्वामी तुलसीदास, उत्तराखंड
7. विवेकानंद स्वामी विवेकानंद साहित्य, स्वामी स्वानंद अद्धेत आश्रम मायावती पिथोरागढ़ खंड 1 पृष्ठ संख्या 39
8. आचार्य श्री राम शर्मा संख्यदर्शन एवं योगदर्शन वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज हरिद्धार पृष्ठ संख्या 57

****